tcsacademy

सामान्य अध्ययन*(General Studies)*

भारतीय संविधान एवं भारतीय राजव्यवस्था

M-1/80 Sec-B, Opp. Sardar Ji Sari Wale, Near Kapoorthala,
Aliganj, Lucknow
Ph. : 0522-4005421, 9565697720
Website : www.tcsacademy

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी **updates** निरंतर पाने लिये निम्नलिखित पेज को **"Like"** करें

www.facebook.com/tcsacademy

www.twitter.com/@tcsacademy

इकाई–1

राज्यव्यवस्था : एक परिचय

राज्य, राज्य के तत्व तथा राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता (State, Elements of state and the need of political of system)

भारतीय राजव्यवस्था को समझनें से पहले जरूरी है कि राजव्यवस्था की कुछ मूलभूत अवधारणाओं तथा पारिभाषिक शब्दावली से आ परिचित हों। ऐसी कुछ महत्वपूर्ण अवधारणायें तथा उनकी व्याख्या आगे दी गई है।

राज्यवस्था से जुड़ी सबसे प्राथमिक अवधारणा 'राज्य' है। राज्य शब्द का प्रयोग यूं तो विभिन्न प्रान्तों, जैसे उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और करने के लिये भी होता है, किन्तु इसका वास्तविक अर्थ किसी प्रान्त से न होकर किसी समाज की 'राजनीतिक संरचना' से होता है। वस्तुतः यह एक अमूर्त अवधारणा है अर्थात् इसे बौद्धिक स्तर पर समझा तो जा सकता है, किंतु देखा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिये भारत की सरकार, संसद, न्यायपालिका राज्यों की सरकारें, नौकरशाही से जुड़े सभी अधिकारी इत्यादि की समग्र संरचना ही राज्य कहलाती है। किसी समाज के विकसित व सक्षम होने की पहचान इस बात से भी होती है कि वह एक स्तंत्र राज्य के रूप में विकसित हो सका है या नहीं? विश्व के अधिकांश विकसित देशों में एक स्थिर राजनीतिक प्रणाली का दिखाई देना (जैसें संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैड, ऑस्ट्रेलिया में) और स्थिर राजनीतिक प्रणाली से वंचित देशों (जैसे कुछ समय पहले के अफगानिस्तान) में विकास प्रक्रिया का अवरूद्ध हो जाना इसी बात का प्रमाण है।

राज्य के तत्व (Elements of State)

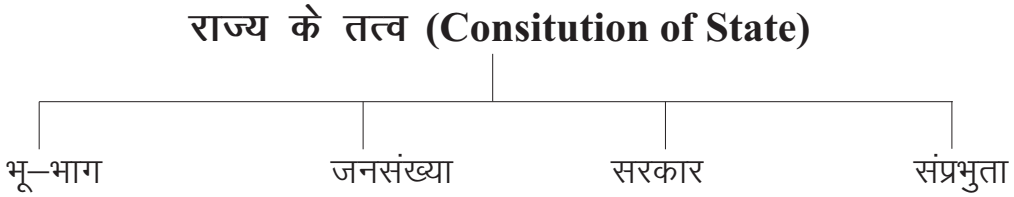

क. भू–भाग : अर्थात् एक ऐसा निश्चित भौगोलिक प्रदेश होना चाहिये जिस पर उस 'राज्य' की सरकार अपनी राजनीतिक क्रियायें करती हो। उदाहरण के लिये, भारत का सम्पूर्ण क्षेत्रफल भारत राज्य का भौगोलिक आधार या भू–भाग है।

ख. जनसंख्या : राज्य होने की शर्त है कि उसके भू–भाग पर निवास करने वाला एक ऐसा जनसमुदाय होना चाहिये जो राजनीतिक व्यवस्था के अनुसार संचालित होता हो। यदि जनसंख्या ही नहीं होगी तो राज्य का अस्तित्व निरर्थक हो जायेगा।

M-1/80 Sec-B, Opp. Sardar Ji Sari Wale, Near Kapoorthala,
Aliganj, Lucknow
Ph. : 0522-4005421, 9565697720
Website : www.tcsacademy.org

ग. सरकार (*Government*) : सरकार एक या एक से अधिक व्यक्तियों का वह समूह है जो व्यावहारिक स्तर पर राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करता है। 'राज्य' और 'सरकार' में यही अंतर है कि राज्य एक अमूर्त संरचना है जबकि सरकार उसकी मूर्त व व्यावहारिक अभिव्यक्ति।

घ. संप्रभुता या प्रभुसत्ता (*Sovereignty*) : यह राज्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। इसका अर्थ है कि राज्य के पास अर्थात् उसकी सरकार के पास अपने भू–भाग और जनसंख्या की सीमाओं के भीतर कोई भी निर्णय करने की पूरी शक्ति होनी चाहिये तथा उसे किसी भी बाहरी ओर भीतरी दबाव में निर्णय करने के लिये बाध्य नहीं होना चाहिये। राज्य के ये चारों तत्व अनिवार्य हैं, वैकल्पिक नहीं। यदि इनमें से एक भी अनुस्थित हो तो राज्य की अवधारणा निरर्थक हो जाती है। इसे कुछ उदाहरणों की सहायता से ज्यादा बेहतर तरीके से समझा जा सकता है–

1. कभी–कभी ऐसा होता है कि सरकार से ज्यादा बेहतर तरीके से समझा जा सकता है–
की सरकार का संकट यही है। चीनी आक्रमण के कारण जब 'दलाई लामा' की भारत की शरण लेनी पड़ी और वे हिमांचल प्रदेश के 'धर्मशाला' नामक स्थान से तिब्बत की निवांसित सरकार का संचालन करने लगे तो एक विचित्र सी स्थिति उत्पन्न हो गयी। क्योंकि तिब्बत की सरकार और कुछ जनता तो यहां थी किन्तु पास न तो अपना भू–भाग था और न ही अपने मूल भू–भाग के संबंध में स्वतंत्र निर्णय करने की ताकत या प्रभुसत्ता।
2. कभी–कभी ऐसा भी हो सकात है कि सरकार भी हो, जनता भी हो, भू–भाग भी हो किन्तु संप्रभुता की कमी के कारण राज्य की धारणा पूरी न हो सके। उदाहरण के लिये, पराधीन भारत में जब वायॅसराय भारतीय भू–भाग का सर्वोच्च प्रशासक होता था तो एक निश्चित भू–भाग के भीतर जनता उसकी आज्ञाओं का पालन करती थी। किन्तु, तब भी वह संप्रभु नहीं था क्योंकि वह ब्रिटेन की सरकार के आदेशों के तहत कार्य करता था।
3. जब किसी देश में अराजक स्थितियां पैदा हो जाती हैं तो भी राज्य का ढांचा चरमराने लगता है। उदाहरण के लिये, अफगानिस्तान में लम्बे समय तक कई गुटों में झगड़ा चलता रहा और अलग–अलग गुट देश के अलग–अलग हिस्से इसलिये उसकी संप्रभुता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता क्यों पड़ती है? (Why is political system required)

एक स्वाभाविक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या मानव समाज को उचित तरीके से रहने के लिये राजनीतिक व्यवस्था की जरूरत है या नहीं? और यदि हां, तो क्यों?

कुछ लोग मानते है कि मनुष्य को राजनीतिक व्यवस्था की जरूरत है ही नहीं। राजनीतिक व्यवस्था तो मनुष्य के इतिहास की गलतियों का एक परिणाम है। यदि सारे मनुष्य समझदारी और पारस्परिक विश्वास से काम करें तो राजनीतिक व्यवस्था की जरूरत अपने आप खत्म हो जाती है। ऐसा मानने वालों में कार्ल मार्क्स तथा अन्य मार्क्सवादी विचारक तो थे हीः स्वयं महात्मा गंधी भी मानते थे कि जब समाज के प्रत्येक सदस्य को 'आत्मिक उन्नति' का पर्याप्त अवसर मिलेगा तो राजनीतिक व्यवस्था की जरूरत नहीं रहेगी।

किन्तु, कुछेक लोगों की राय छोड़ दें तो अधिकांश विचारकों की सोच यही है कि राज्य का अस्तित्व मनुष्य के लिये जरूरी होता है। इसकी प्रमुख वजह यही मानी गई है कि मनुष्य चाहे जितना भी विवेकशील प्राणी होः वह कभी–कभी या आमतौर पर अपने स्वार्थ के अधीन होता है तथा दूसरे व्यक्तियों से उसके टकराव की स्थितियां बनती रहती हैं। राज्य का ढांचा सभी मनुष्यों को एक निश्चित कानून व्यवस्था के दायरे में ले आता है ताकि अपनी मूल असुरक्षाओं से मुक्त होकर सभी एक सहज जीवन व्यतीत कर सके। कई महान विचारकों ने तो यहाँ तक कहा है कि मनुष्य को सही अर्थो में मनुष्य बनने का मौका तभी मिलता है जब वह

राज्य की आज्ञाओं का पालन कराता है। यदि राज्य औ कानून नहीं होंगे तो समाज के ताकतवर लोग कमजोर लोगों पर शक्ति का दुरूपयोग करेंगे और कमज़ोर लोग हमेशा भय में रहेंगें, अपने व्यक्तित्व का सहज विकास नहीं कर सकेंगे। चूंकि राजनीतिक व्यवस्था के पास किसी भी व्यक्ति, समुदाय या संस्था से ज्यादा ताकत होती है, इसलिये वह ऐसी सभी अनुचित शक्तियों पर नियंत्रण कर सकता है।

मानव समाज को सचमुच राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता है, इसका एक प्रमाण बहुत स्पष्ट है। इतिहासकारों और मानवशास्त्रियों ने अभी तक प्राचीन से प्राचीन और सरल से सरल जितने भी समाजों का अध्ययन किया है, उन सभी में किसी न किसी रूप में राजनीतिक ढांचे की उपस्थिति देखी गई है, चाहे वह ढांचा राजतंत्र का हो, लोकतंत्र का या तानाशाही का।

यह ध्यान रखना जरूरी है कि आज के समय में राजनीतिक व्यवस्था की भूमिका काफी ज्यादा बढ़ गई है। जनसंख्या की अधिकता के कारण अब यह बिल्कुल संभ नहीं रहा है कि लोग आपसी सहमति से ही काम चला लें। औपचारिक कानूनों के निर्माण और कानूनों को लेकर होने वाले विवादों की स्थिति में न्यायिक प्रक्रियाओं की जरूरत बहुत अधिक मात्रा में पड़ने लगी है। इतना हीनहीं, आज की राजनीतिक व्यवस्था सिर्फ कानून का पालन करवाने तक सीमित नहीं है, अब उसने लोककल्याणकारी राज्य का रूप धारण कर लिया है और समाज के सभी वर्गों को स्वतंत्रता, समानता और न्याय उपलब्ध कराना अब उसकी जिम्मेदारी हो गई है।

जहाँ तक भारत में राजनीतिक प्रणाली का प्रश्न है, इसकी आवश्यकताओं का कई स्तर पर महसूस किया जा सकता है, जैसे–

क. भारत में राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया अभी चल रही है जिसे राष्ट्र विरोधी ताकतें नुकसान पहुंचा सकती है। ऐसें खतरों से निपटने के लिये मजबूत राजनीतिक प्रणाली जरूरी है।

ख. भारत की आंतरिक सुरक्षा के समक्ष अभी कई चुनौतियां है : जैसे– आतंकवाद नक्सलवाद, अलगाववाद इत्यादि। इन चुनौतियों से हम तब तक नहीं निपट सके जब तक हमारें पास राज्य का एक मजबूत ढांचा न हो।

ग. भारतीय राज्य एक **कल्याणकारी राज्य** है और वह वंचित वर्गों को समानता की स्थिति में लाने के लिये गंभीर प्रयास करता है। आरक्षण तथा सामाजिक न्याय की अन्य नीतियां इसी उद्देश्य से लागू की जाती है। चूंकि भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा (जैसे–स्त्रियां, बच्चें, पिछड़ी जातियां तथा अल्पसंख्यक समुदाय) भिन्न–भिन्न दृष्टियों से वंचन का शिकार रहा है और उन्हें और उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने के लिये जरूरी है क सरकार की ओर से उन्हें विशेष सुविधायें दी जायें, इसलिये भी भारत के लिये एक सुंगठित राजनीतिक संरचना जरूरी है।

घ. भारत में विभिन्न हित–समूह रहते हैं जिनके बीच अपने हितों को लेकर टकराव होना स्वाभाविक है। इन हितों में सामंजस्य करते हुये उचित कानूनों के निर्माण के लिये संसद की जरूरत है जबकि ऐसे विवादों का न्यायिक समाधान करने के लिये एक सशक्त और सुलझी हुई न्यायपालिका भी जरूरी है।

ड़ भारतीय समाज व्रीव **सामाजिक परिवर्तनों** के दौर से गुज़र रहा है जिसके कारण वंचित वर्ग अपने अधिकारों की मांग बुलंद कर रहे हैं। इससे समाज के वे तबके असहज हैं जो पुरानी व्यवस्था में लाभकारी स्थिति में थे। ये परिवर्तन स्वाभाविक तौर पर तनावों को जन्म देते हैं जो कभी–कभी दलितों तथा स्त्रियों के विरूद्ध होने वाले अत्याचारों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। सामाजिक परिवर्तन तथा आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया को इन दबावों के लिये तथा उसे सुचारू रूप से चलाने के लिये सशक्त राजनीतिक ढांचे की जरूरत पड़ती है।

M-1/80 Sec-B, Opp. Sardar Ji Sari Wale, Near Kapoorthala,
Aliganj, Lucknow
Ph. : 0522-4005421, 9565697720
Website : www.tcsacademy.org

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. राज्य के लिये अनिवार्य तत्व हैं–
क. जनसंख्या
ख. सरकार
ग. संप्रभुता
घ. भू–भाग

कूट :
अ. क, ख और ग
ब. क, ग, और घ
स. क, ग, और घ
द. क, ख, ग, और घ

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. राज्य के चारों तत्व वैकल्पिक रूप से अनिवार्य होते हैं।
ख. यदि चारों तत्वों में से एक भी अनुपस्थित हो तो राज्य की अवधारणा निरर्थक हो जाती है।

उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो और न ही ख

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. संप्रभुता राज्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है।
ख. संप्रभुता राज्य की वह सार्वभौम शक्ति है जिससे वह किसी भी बाहय अथवा आंतरिक निर्णयों को लेने के लिये स्वतंत्र है।

उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो और न ही ख

4. ब्रिटिश भारत में वायसराय का शासन वस्तुतः राज्य नहीं था–
क. निश्चित भू–भाग के अभाव के कारण।
ग. सरकार के अभाव के कारण।
घ. संप्रभुता के अभाव के कारण।

5. भारत में राजनीतिक प्रणाली की आवश्यकता के कारण हैं–

क. भारत में राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया अभी चल रही है, जिसे राष्ट्र विरोधी ताकतें नुकसान पहुंचा सकती हैं।
ख. भारतत की आंतरिक सुरक्षा के समक्ष कई चुनौतियां हैं।
ग. भारत एक कल्याणकारी राज्य की भूमिका में है।
घ. भारतीय समाज तीव्र सामाजिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है।

उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य हैं?
अ. केवल ग और घ
ब. केवल क,ग और घ
स. क, ग और घ दोनों
द. उपरोक्त सभी

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. राज्य से अभिप्राय किसी समाज की राजनीतिक संरचना से है।
ख. राज्य एक अमूर्त अवधारणा है।
ग. सरकार, राज्य की मूर्त व व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य हैं?
अ. केवल क और ख
ब. केवल ख और ग
स. क और ग
द. उपरोक्त सभी

M-1/80 Sec-B, Opp. Sardar Ji Sari Wale, Near Kapoorthala, Aliganj, Lucknow
Ph. : 0522-4005421, 9565697720
Website : www.tcsacademy.org

शासन के अंग *(Organs f Government)*

किसी भी सरकार या राजव्यवस्था के सामने मूलतः तीन चुनौतियां होती हैं– (क) कानून बनाने की चुनौती, (ख) कानूनों के अनुसार शासन कार्य का संचालन करने की चुनौती, तथा (ग) व्यक्तियों के आपसी विवादों या व्यक्ति और सरकार के विवादों के समाधान के लिये कानून–प्रणाली के अनुसार न्याय व्यवस्था संचालित करने की चुनौती। प्रत्येक शासन व्यवस्था में इन तीन मूल चुनौतियों के समाधान के लिये उपाय किये जाते हैं। जिन तीन व्यवस्थाओं के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान किया जाता है, उन्हें शासन के अंग कहते हैं। शासन के तीनों अंग निम्नलिखित हैं–

शासन के अंग (Organs of Government)

विधायिका	कार्यपालिका	न्यायपालिका
अर्थात् कानून बनाने वाली संस्था	अर्थात् कानूनों के अनुसार शासन लाने वाली संस्था	अर्थात् कानूनों के अनुसार विवादों का समाधान करने वाली संस्था

विधायिका *(Legislature)*

विधायिका का कार्य कानूनों का निर्माण करना है। राजतंत्रीय प्रणाली में यह कार्य आमतौर पर राजा के हाथ में होता था तथा राजा की इच्छाओं को ही कानून का दर्जा प्राप्त था। धर्मतंत्रीय शासन प्रणाली में धार्मिक ग्रन्थों को ही कानून तथा धर्म के सर्वोच्च पदाधिकारियों को कानूनों का अंतिम व्याख्याकार माना जाता था क्योंकि वे ही बताते थे कि कानून क्या है? यदि यूनान के प्राचीन नगर राज्यों के उदाहरण छोड़ दें तो आधुनिक काल से पूर्व मोटे तौर पर कानूनों का निर्माण इसी रीति से होता रहा।

आधुनिक काल में लोकतंत्र की स्थापना के बाद माना जाता गया कि कानूनों का निर्माण जनता की इच्छाओं के अनुसार होना चाहिये। स्विट्जरलैण्ड जैसे कुछ देशों में कोशिश की जाती है कि जनता की इच्छाओं को सीधे तौर पर ही जान लिया जाये। सामान्यतः जनसंख्या तथा क्षेत्रफल की अधिकता के कारण व्यावहारिक तौर पर यह संभव नहीं होता कि सारी जनता की राय जानी जा सके। इसलिये, आजकल अधिकांश देशों में प्रतिनिधि लोकतंत्र के माध्यम से विधायिका का गठन किया जाता है। इसके अंतर्गत, एक विशेष का जनसमुदाय अपने एक प्रतिनिधि को चुनकर विधायिका या विधानमण्डल में भेजता है तथा सभी क्षेत्रों से चुनकर आये ऐसे प्रतिनिधि आपसी सहमति से कानून का निर्माण करते हैं। चूंकि ये सब प्रतिनिधि जनता द्वारा इसी उद्देश्य के लिये चुने जाते हैं, इसलिये मान लिया जाता है कि इनकी सहमति से निर्मित कानून वस्तुतः जनता की इच्छा के अनुसार ही बनायें गये हैं।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं में विधायिका आमतौर पर दो सदनों से मिलकर बनती है, जैसे भारत में लोकसभा और राज्यसभा। इनमें से एक सदन जनता द्वारा सीधे चुना जाता है और उनकी कानूनों के निर्माण में प्रमुख भूमिका होती है। भारत

M-1/80 Sec-B, Opp. Sardar Ji Sari Wale, Near Kapoorthala, Aliganj, Lucknow
Ph. : 0522-4005421, 9565697720
Website : www.tcsacademy.org

में लोकसभा इसी भूमिका में है। दूसरे सदन की जरूरत मुख्यतः उन देशों में होती है जो संघात्मक ढांचे के अुनसार संगठित होते हैं। संघात्मक ढांचे को सुरक्षित बनाये रखने के लिये इस दूसरे सदन में सभी राज्यों या प्रान्तों के कुछ सदस्यों को यिला जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 'सीनेट' और भारत में 'राज्यसभा' की यही भूमिका है। चूंकि अधिकांश कानूनों के निर्माण के लिये इस सदन की भी सहमति आवश्यक होती है, इसलिये इस सदन की उपस्थिति से यह सुनिश्चित होता रहता है कि केन्द्र सरकार राज्यों की शक्तियों को छीन न ले। ध्यातव्य है कि ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था इसका एक महत्वपूर्ण अपवाद है। वहां की राजनीतिक प्रणाली एकात्मक है, इसलिये वस्तुतः वहां दूसरे सदन की जरूरत नहीं है। किन्तु तब भी वहां लॉर्ड्स सभा के रूप में दूसरा सदन रखा गया है, हालांकि उसका मूल कार्य अपनी परंपराओं को सुरक्षित रखना तथा कुछ अतिविशिष्ट व गणमान्य लोगों को संसद में शामिल होने का मौका देना है, न कि प्रान्तों या स्थानीय इकाइयों के अधिकारों की रक्षा करना।

जहां तक भारतीय विधायिका का प्रश्न है, यह संघात्मक ढांचे पर आधारित है। केन्द्र और विभिन्न राज्यों की विधिकायें संविधान में निर्दिष्ट अपने–अपने क्षेत्रों के लिये विधान बनाती हैं। केन्द्रीय विधायिका या संसद द्विसदनीय है। प्रचलित भाषा में, इसके सदनों में से 'लोकसभा' को निचला सदन तथा 'राज्यसभा' उच्च सदन कहते हैं (हालांकि संविधान में इस शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया हैं)। 'राज्य–सभा' का गठन कुछ हद तक अमेरिकी सीनेट की तरह राज्यों को प्रतिनिधित्व देने के लिये है और कुछ हद की विधिकायें आमतौर पर एकसदनीय हैं। इस सदन को 'विधानसभा' कहते हैं। संविधान में व्यवस्था है कि यदि किसी राज्य विशेष में जरूरत महसूस की जाये तो दूसरे सदत्त के तौर पर 'विधान परिषद' की स्थापना की जा सकती है। विधायिका के एक अंग के रूप में भारतीय राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों पर अपनी सहमति प्रदान करता है।

कार्यपालिका *(Executive)*

शासन के दूसरे अंग को कार्यपालिका कहते है। इसका आशय उस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से है जो विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार शासन चलाता है अर्थात् कानूनों को लागू करता है।

प्राचीन व्यवस्थाओं में विधायिका और कार्यपालिका में कोई भेद नहीं था। उदाहरण के लिये, राजतन्त्र में राजा विधायिका का प्रमुख भी होता था और कार्यपालिका का भी। इसी प्रकार, धर्मतंत्र में धर्म की प्रमुख ही दोनों अंगों का सर्वोच्च अधिकारी होता था।

आधुनिक काल में जैसे–जैसे लोकतंत्र और संविधानवाद का विकास हुआ, कार्यपालिका की संरचना में परिवर्तन आने लगे। वर्तमान समय में कार्यपालिका के कई रूप दिखाई पड़ते हैं जो नीचे बने चित्र में देखकर समझे जा सकते है–

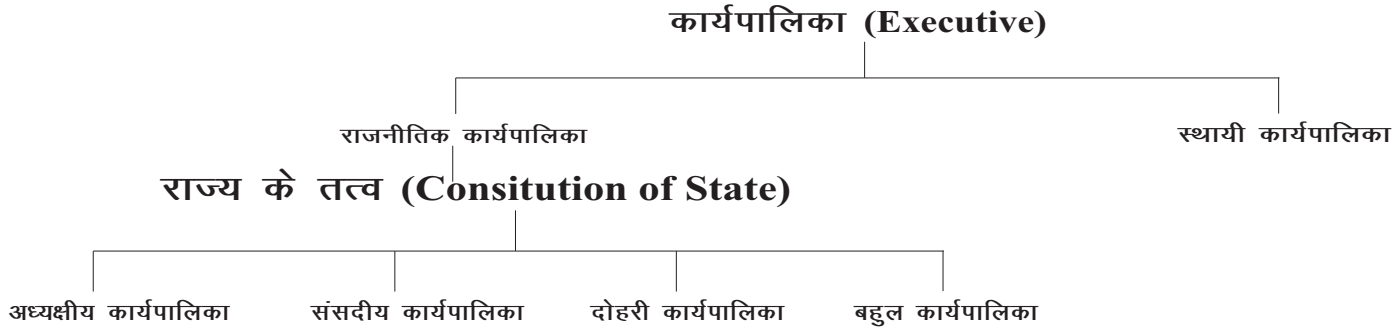

उपरोक्त चित्र द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण में कार्यपालिका के सबसे महत्वपूर्ण दो प्रकार हैं– क. राजनीतिक कार्यपालिका तथा ख. स्थायी कार्यपालिका।

राजनीतिक कार्यपालिका कार्यपालिका के सर्वोच्च स्तर पर होती है जिसे जनता निश्चित अवधि के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनती है। उदाहरण के लिये, भारत में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल या अमेरिका में राष्ट्रपति इसी के उदाहरण हैं।

इसके विपरीत, स्वामी कार्यपालिका में वे उच्च पदाधिकारी शामिल होते हैं जो अधिकारीतंत्र के अंग होते हैं तथा जिनका कार्यकाल किसी तरह के निर्वाचन पर निर्भर नहीं होता। उदाहरण के लिये, भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य सिविल सेवाओं के अधिकारी इसी कारण हैं। स्थायी कार्यपालिका को राजनीतिक कार्यपालिका के निर्देशों के अनुरूप कार्य करना होता है। इसमें शामिल लोगें को प्रशासन के क्षेत्र में विशेष दक्षता हासिल होती है। इसलिये, जिन बिंन्दुओं पर राजनीतिक कार्यपालिका ऐसी दक्षता से वंचित होती है, वहां स्थायी कार्यपालिका के सदस्य उसकी सहायता करते हैं।

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि राजनीतिक कार्यपालिका के भी कई रूप देखे जा सकते हैं, जैसे–

क. अध्यक्षीय कार्यपालिका *(Political Executive)*

यह प्रणाली अमेरिका जैसे देशों में प्रचलित है जहां जनता एक निर्वाचकगण के माध्यम से राजनीतिक कार्यपालिका के प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति का चयन करती है। राष्ट्रपति को कार्यपालिका के क्षेत्र में सभी शक्तियां प्राप्त होती है।

ख. संसदीय कार्यपालिका *(Parliamentary Executive)*

यह प्रणाली भारत और इंग्लैण्ड जैसे देशों में प्रचलित है। इसके अन्तर्गत विधायिका के सदस्यों में से ही राजनीतिक कार्यपालिका का चयन होता है। विधायिका में जिस दल के सदस्य बहुमत में होते हैं, वही दल अपनी सरकार बनाता है। सरकार चलाने वाले इसके सदस्यों के समूह मंत्रिमण्डल कहा जाता है।

ग. दोहरी कार्यपालिका *(Dual Executive)*

यह एक विशेष प्रणाली है जो फ्राँस जैसे कुछ देशों में कहा दिखाई पड़ती है। इसके अंतर्गत कार्यपालिका की शक्तियाँ राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में विभाजित होती हैं। ध्यातव्य है कि इसमें राष्ट्रपति का चुनाव अमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली के समान होता है जबकि प्रधानमंत्री का चयन ब्रिटिश या भारतीय संसदीय प्रणाली के समान होता है।

घ. बहुल कार्यपालिका *(Plura Executive)*

यह एक विशिष्ट व्यवस्था है जिसका उदाहरण स्विट्जरलैण्ड जैसे कुछ ही देशों में देखा जा सकता है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक कार्यपालिका के सभी सदस्य बराबर शक्तियाँ रखते हैं, उनमें सर्वोच्च अधिकारी का पद सिर्फ औपचारिक या नाममात्र का होता है। उदाहरण के लिये, स्विट्ज़रलैण्ड की राजनीतिक कार्यपालिका में एक प्रमुख सहित कुल सात सदस्य होते हैं किन्तु इन सातों की शक्तियां बराबर होती हैं और प्रमुख के रूप में हर वर्ष इनकी नियुक्ति परिवर्तित होती रहती है।

जहां तक भारतीय कार्यपालिका का प्रश्न है, इसमें राजनीतिक कार्यपालिका के स्तर पर बिटेन की संसदीय प्रणाली जैसा ढांचा स्वीकार किया गया है जिसके अनुसार लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल मंत्रिमण्डल का गठन करता है। मंत्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता है। राष्ट्रपति भारतीय कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है, किन्तु सामान्य स्थितियों में उसे मंत्रिमण्डल के निर्देशों के अनुसार ही काम करना होता है।

राजनीतिक कार्यपालिका के अलावा, भारत में स्थायी कार्यपालिका के रूप में एक सशक्त नौकरशाही या अधिकारीतंत्र भी है। इसमें भारतीय प्रशासनिक सेवा जैसी अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी भी शामिल हैं और भारतीय राजस्व सेवा जैसी केन्द्रीय सेवाओं के अधिकारी भी। राज्यों के स्तर पर उनकी अपनी लोक–सेवायें भी कार्य करती है।

न्यायपालिका *(Judicary)*

शासन का तीसरा अंग न्यायपालिका कहलाता है। न्यायपालिका के कई कार्य है। इसका प्रमुख कार्य यह है कि विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार विभिन्न विवादों का समाधान करें। किंतु, आजकल न्यायपालिका की भूमिका का काफी हद तक विधायिका के समान भी होने लगी है। इसका कारण यह है कि कई कानून इतने जटिल और अस्पष्ट होते हैं कि न्यायपालिका को उनकी मौलिक व्याख्या करनी पड़ती है। ये व्याखायें स्वतः कानून का दर्जा प्राप्त कर लेती हैं जिन्हें न्यायधीश–निर्मित–कानून या निर्णय–कानून कहते हैं। वर्तमान समय में इन्हें कानूनों की एक पृथक् शाखा के रूप में महत्व दिया जाता है। ध्यातव्य है कि उच्च स्तर के न्यायलयों द्वारा दिये गये निर्णय निचली अदालतों के लिये पूर्वनिर्णय होते हैं तथा उनके लिये बाद के किसी भी समान मामले में उन पूर्वनिर्णयों को आधार बनाना जरूरी होता है।

न्यायपालिका की शक्तियां *(Power of Judicary)*

न्यायपालिका की शक्तियां इस आधार पर तय होती हैं कि शासन का स्वरूप कैसा है? साधारणतः एकात्मक शासन प्रणाली में न्यायपालिका कमजोर होती है तथा संसद की शक्ति बहुत अधिक होती है। ब्रिटेन की राजनीतिक प्रणाली इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। किन्तु, संघात्मक प्रणालियों में न्यायपालिका की शक्ति हमेशा अधिक होती है। उन्हें केन्द्र और प्रान्तों के बीच उत्पन्न होने वाले वैधानिक विवादों का समुचित समाधान करने के लिये यह शक्ति दी जाती है कि वे केन्द्रीय विधायिका द्वारा निर्मित कुछ कानूनों को भी इस आधार पर अवैध घोषित कर दें कि वे संघात्मक प्रणाली या संविधान की मूल भावना के विरूद्ध हैं। अमेरिका और भारत के सर्वोच्च न्यायालयों को यह शक्ति प्राप्त है, इसलिये वे अत्यन्त ताकतवर हैं। जिन देशों में लिखित संविधान होता है, वहां सविधान का सटीक निर्वचन करने का दायित्व भी न्यायपालिका के पास होता हैं, जिससे उसकी शक्ति और बढ़ जाती है। पुनः जिन देशों के संविधान नागरिकों को मूल अधिकारों की गारण्टी देते हैं, वहां न्यायपालिका मूल अधिकारों की संरक्षक होती है। और न्यायिक पुनरीक्षण आदि की उसकी शक्ति बढ़ जाती है। पुनः जिन देशों के संविधान नागरिकों को मूल अधिकारों की गांरटी देते हैं, वहां न्यायपालिका मूल अधिकारों की संरक्षक होती है और न्यायिक पुनरीक्षण आदि की उसकी शक्ति बढ़ जाती है। इस संबंध में 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' तथा 'यथोचित विधि प्रक्रिया' का विवाद बहुत रोचक है। इनमें से पहला सिद्धान्तं संसंद को न्यायपालिका से ताकतवर बनाता है (जैसे इंग्लैण्ड में), जबकि दूसरा सिद्धान्त न्यायपालिका को सर्वोच्चता प्रदान करत है जैसे अमेरिका तथा भारत में।

भारतीय न्यायपालिका अत्यंत शक्तिशाली है। भारतीय राजव्यवस्था का ढांचा विधायिका और कार्यपालिका के स्तर पर भले ही संघात्मक हो, न्यायपालिका के स्तर पर यह एकात्म्क होने के नजदीक है क्योंकि केन्द्र और राज्यों के स्तर पर भिन्न–भिन्न अ न्यायपालिकायें नहीं है। राज्यों के उच्च न्यायालय सीधे तौर पर सर्वोच्च न्यायाल के अधीन होते हैं। इसके अलावा, मूल अधिकारों के संरक्षक के तौर पर तथा संविधान के निर्वचन की अंतिम शक्ति रखने के कारण भारतीय न्यायपालिका काफी शक्तिशाली है। न्यायियक पुनरीक्षण का अधिकार उसे पहले भी प्राप्त था, अब उसकी व्याख्या संविधान के आधारभूत लक्षणों के एक अंग के रूप में करके न्यायपालिका ने अपनी यह शक्ति और बढ़ा ली है।

कानूनों के विभिन्न प्रकार *(Different types of laws)*

न्यायपालिका के संबंध में यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि कानूनों के विभिन्न प्रकार कौन से हैं तथा किस राजनीतिक व्यवस्था में किस प्रकार के कानूनों को ज्यादा महत्व दिया जाता है? कानूनों या विधियों के कुछ प्रमुख प्रकार हैं–

कानून या विधि के प्रकार (Types of law)

सकरात्मक विधि | प्राकृतिक या नैसर्गिक विधि | लोक विधि | ईश्वरीय विधि

क. सकारात्म्क विधि *(Positive Law)* का अर्थ होता है– व्यक्तियों के एक निश्चित समूह द्वारा बनाया, जाने वाला कानून। उदाहरण के लिये, वर्तमान में अधिकांश लोकतत्रों में संसद द्वारा कानून बनाया जाना सकारात्मक विधि का ही प्रमाण है। ब्रिटेन जैसे देशों में सकारात्मक विधि को ही सर्वोच्च माना जाता है। इसीलिये, वहां न्यायपालिका की शक्तियां संसद की तुलना में अत्यन्त सीमित हैं।

ख. प्राकृतिक विधि *(Natural Law)* का अर्थ है वे कानून जो स्वंय प्रकृति ने निर्मित किये हैं। इस कानून का प्रयोग आमतौर पर उन देशों में होता है जहां संविधान की सर्वोच्चता तथा न्यायपालिका की सर्वोच्चता के सिद्धान्त लागू होते हैं। इसके तहत यदि संसद द्वारा बनाया गया कानून प्रकृति द्वारा बनाये गये कानूनों या नागरिकों के मूल अधिकारों या नैतिक औचित्य के खिलाफ होता है तो न्यायालय उसे निरस्त कर देता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई संसद व्यक्ति के सांस लेने के अधिकार को सीमित करना चाहे तो यह प्राकृतिक विधि के खिलाफ माना जायेगा। क्योंकि प्रकृति ने सभी प्राणियों को सांस लेने की शक्ति और सुविधा प्रदान की है। इसी प्रकार, यदि संसद सदस्य पूर्ण बहुमत से अपने कार्यकाल को स्थायी बनाना चाहें तो भी सर्वोच्च न्यायालय इसे अवैध घोषित कर देगा क्योंकि यह नागरिकों के अपने प्रतिनिधियों को चुनने के अधिकार के खिलाफ है। अमेरिका और भारत के सर्वोच्च न्यायालय इसी सिद्धान्त के आधार पर संसद द्वारा निर्मित विधियों का न्यायिक पुनरीक्षण करते हैं।

. लोक विधि *(Common Law)* का अर्थ उन कानूनों से है जो लम्बे समय से समाज में चली आ रही परंपराओं को ही कानून का रूप देने से निर्मित हुये हैं। जिन क्षेत्रों में संविधान मौन होता है, वहां आमतौर पर लोक विधि का ही सहारा लिया जाता है। परंपरावादी देशों में लोकविधि का महत्व काफी ज्यादा होता है। उदाहरण के लिये, ब्रिटेन में आज भी लोकविधि को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, विशेषतः वहां का कंजर्वेटिव दल इन विधियों के पक्षे मं रहता है।

घ. ईश्वरीय विधि *(Divine Law)*

का संबंध धर्मतंत्र पर आधारित शासन प्रणालियों या उन देशों से है जहां किसी धार्मिक ग्रन्थ को ही संविधान की मान्यता दे दी गई हो। ऐसे देशों में ईश्वर के कथनों को ही कानून माना जाता है और उन्हें धर्मग्रन्थों के आधार पर निर्वाचित किया जाता है। ऐसी व्यवस्थाओं में न्यायपालिका के सर्वोच्च स्तर पर ही धार्मिक संगठन या चर्च के प्रमुख लोग ही होते हैं। उन्हें अधिकार होता है कि जहां धार्मिक ग्रन्थ मौन हों, वहां से धर्म की मूल धारणाओं के अनुसार उचित व्याख्या दें।

भारत की विधि व्यवस्था *(Divine Law)*– उपरोक्त विधियों के समन्वय से निर्मित हुई है। यह मूलतः सकारात्मक विधि के सिद्धान्त पर आधारित है क्योंकि संसद को कानून बनाने तथा संविधान को संशोधित करने की शक्ति हासिल है। किन्तु, नायपालिका को न्यायिक पुररीक्षण की शक्ति देकर यह प्राकृतिक विधि के तत्व को भी शामिल करती है। जिन क्षेत्रों में संसद ने किवशेष कानून न बनाया हो या न्यायपालिका ने विशिष्ट निर्णय न दिया हो, वहां भारतीय विधि व्यवस्था लोकविधियों को भी महत्व देती है। ईश्वरीय विधियों को सामान्यतः स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। तब भी, धर्म विशेष के आंतरिक धार्मिक मामलों में धार्मिक विधियों को उस सीमा तक स्वीकार किया जाता है जहां तक वह नागरिकों के मूल अधिकारों या कानूनी अधिकारों का उल्लंघन न करती हो।

प्राकृतिक न्याय की धारणा *(Concept of Natural Justice)*

न्यायपालिका को संपूर्णता में समझने के लिये यह जानना भी जरूरी है कि प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त क्या है और यह आजकल इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया है? प्राचीन और मध्यकाल में राजा का न्याय निरंकुश किस्म का होता था अर्थात् उसे

यह सिद्ध नहीं करना पड़ता था कि न्याय की प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ और पारदर्शी हैं आधुनिक काल में व्यक्ति का महत्व बढ़ता गया है और अब न्याय–प्रणाली काफी पारदर्शी हो गयी है। इस पारदर्शिता की अभिव्यक्ति प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त में होती है।

प्राकृतिक न्याय एक गतिशील अवधारणा है अर्थात् इसका अर्थ पूर्णतः सुनिश्चित न होकर समय के साथ बदलता रहा है। मोटे तौर पर, इसके अंतर्गत निम्नलिखित सिद्धान्त स्वीकार किये जाते हैं–

क. अभियुक्त को निर्णय से पूर्व अपना पक्ष रखने का अवसर जरूर मिलना चाहिये।

ख. न्यायाधीश को निर्णय सुनाने से पूर्व दोनों पक्षों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये।

ग. न्यायाधीश को निर्णय करने की प्रक्रिया में अपने व्यक्तिगत विचारों, आदर्शो तथा पूर्वोग्रहों से तटस्थ रहना चाहिये।

घ. निर्णय सुनाते समय सिर्फ निर्णय ही नहीं बताया जाना चाहिये बल्कि वे कारण भी स्पष्ट किये जाने चाहियें जिन्होनें न्यायाधीश को इस निर्णय तक पहुँचाया है।

ड़ किसी भी व्यक्ति को स्वंय अपने खिलाफ गवाही देने के लिये बाध्य नहीं किया जाना चाहिये।

भारतीय न्यायपालिका ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त को पूरी तरह स्वीकार किया है। वह इस सिद्धान्त पर कार्य करती है कि ''हजार अपराधी भले छूट जायें, एक भी निरपराध को सजा नहीं मिलना चाहिये।'' प्रत्येक अभियुक्त को अदालत में अपना पक्ष रखने का मौका मिलता है, चाहे उसका कृत्य कितना भी घृणित हो या चाहे उसे सिद्ध करने के लिये कई गवाह मौजूद हो। इससे न्याय मिलने में थोड़ी देरी भले हो राज्य, का कुछ खर्च भी भले बढ़ जाये, प्राकृतिक न्याय का सिंद्धान्त सही तरीके से लागू होता है। वर्तमान में मुंबई बम धमाकों के अभियुक्त मुहम्मद कसाब पर चलने वाला अत्यंत खर्चीला व अत्यधिक समय लेने वाला मुकदमा यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि भारतीय राजव्यवस्था प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त को पूरी प्रतिबद्धता से स्वीकार करती है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी व राजीव गांधी के हत्यारों को अदालत द्वारा अपना पक्ष रखने का पूरा मौका दिया जाना भी इसी बात को प्रमाणित करता है।

न्यायिक सक्रियतावाद की धारणा

वर्तमान समय में न्यायिक सक्रियतावाद की चर्चा काफी ज्यादा होने लगी है। इसका अर्थ उस स्थिति से है जब न्यायपालिका आगे बढ़ चढ़कर काम करती है तथा विधायिका और कार्यपालिका के लिये निश्चित किये गये कार्यो में भी दखल देने लगती है। भारतीय राज्यव्यवस्था में पिछले 20–30 वर्षो में न्यायिक सक्रियतावाद के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। जनहित याचिकाओं को आधार बनाकर भारत के सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों ने कई अभूतपूर्व निर्णय दिये हैं। अनुच्छेद–21 की मौलिक व्याखायें इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं। इसके अलावा आजकल कुछ न्यायाधीश पर्यावरण–रक्षा के मुद्दे पर कई क्रांतिकारी महत्व के निर्णय दे रहे हैं। ऐसी न्याय–पीठों को आजकल 'हरित–पीठें' कहा जाने लगा है।

शासन के तीनों अंगों में संबंध *(Relation among the there organs f government)*

किसी देश की राजव्यवस्था को समझने के लिये यह जानना भी जरूरी होता है कि वहां शासन के तीनों अंगों में कैसा संबंध है? मोटे तौर पर यह संबंध तीन प्रकार का हो सकता है–

1. कहीं–कहीं ये तीनों अंग परस्पर जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिये, राजतंत्र में राजा विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका तीनों का सर्वोच्च अधिकारी होता है। अधिनायकतंत्र/तानाशाही तथा धर्मतंत्र में भी ऐसी ही व्यवस्था देखी जाती है। यह लक्षण किसी राजव्यवस्था के पारंपरिक तथा गौर–लोकतांत्रिक होने की ओर इशारा करता है।

2. कुछ देशों में विधायिका और कार्यपालिका में नजदी का संबंध होता है जबकि न्यायपालिका इनसे अलग होती है। यह व्यवस्था संसदीय प्रणाली वाले देशों में दिखाई पड़ती है। इनमें कार्यपालिका, विधायिका का ही अंग होती है। जबकि न्यायपालिका इन दोनों से पृथक् और स्वतंत्र होती है। भारत और ब्रिटेन को मोटे तौर पर इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

3. अमेरिका जैसे देशों में यह संबंध कुछ अलग है। वहां ये तीनों अंग एक–दूसरे से पृथक् होते हैं। इसे शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त कहते हैं। कार्यपालिका के प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति का चुनाव जनसाधारण द्वारा निर्वाचित निर्वाचक–गण के माध्यम से होता है। विधायिका के दोनों सदनों का चुनाव जनता अलग तरीकें से करती है। न्यायपालिका के पदाधिकारियों का चयन राष्ट्रपति करता है किन्तु इसके लिये उसे सीनेट के अनुसमर्थन की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार, शासन के तीनों अंग एक–दूसरे की शक्तियों को मर्यादित करते हैं और इसके लिये संविधान में कई विशेष प्रावधान भी किये गये हैं। इस सिद्धान्त को 'नियंत्रण व संतुलन' का सिद्धान्त कहते हैं।

जहां तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का प्रश्न है, इसमें शासन के तीनों अंगों का संबंध न तो पूरी तरह अमेरिका जैसा है और न ही इंग्लैंड जैसा। भारत में ब्रिटेन की तरह कार्यपालिका, विधायिका के भीतर से ही बनती है क्योंकि भारत में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है। इसके बावजूद, भारतीय संसद ब्रिटिश संसद की तरह इतनी ताकतवर नहीं है कि उसके ऊपर सीमायें आरोपित न की जा सके। भारतीय न्यायपालिका को अमेरिकी न्यायपालिका की तरह यह शाक्ति प्राप्त है कि वह संसद द्वारा पारित कानून का न्यायिक पुनरीक्षण कर सके, और यदि वह कानून संविधान निर्माताओं ने भारत की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाया था और तक का अनुभव सिद्ध करता है कि उनका दृष्टिकोण उचित ही था।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किस देश में प्रत्यक्ष लोकतंत्र का उदाहरण पाया जाता है।
   - क. अमेरिका
   - ख. ब्रिटेन
   - ग. भारत
   - घ. स्विट्जरलैंड

2. निम्नलिखित में सरकार के अंग के रूप में जाने जाते हैं:
   - क. न्यायपालिका
   - ख. विधायिका
   - ग. कार्यपालिका

   कूट :
   - अ. क और ख
   - ब. ख और ग
   - स. क और ग
   - द. क, ख और ग

3. निम्न में से किसे जनता निश्चित अवधि के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनती है?
   - क. राजनीतिक कार्यपालिका
   - ख. स्थायी कार्यपालिका
   - ग. राजनीतिक व स्थायी कार्यपालिका दोनों
   - घ. न तो राजनितिक और न ही स्थायी कार्यपालिका

4. निम्नलिखित में से किस कार्यपालिका का चयन विधायिका के सदस्यों में से ही होता है?
   - क. अध्यक्षीय कार्यपालिका
   - ख. संसदीय कार्यपालिका
   - ग. दोहरी कार्यपालिका
   - घ. उपरोक्त में से कोई नहीं

5. भारतीय शासन–प्रणाली का स्वरूप है–
   - क. अध्यक्षीय
   - ख. संसदीय
   - ग. अध्यक्षीय व संसदीय दोनों
   - घ. उपरोक्त में से कोई नहीं

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
   - क. भारत में मंत्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करता है।
   - ख. मंत्रिमंडल का सामूहिक उत्तरदायित्व लोकसभाा के प्रति होता है।

M-1/80 Sec-B, Opp. Sardar Ji Sari Wale, Near Kapoorthala, Aliganj, Lucknow
Ph. : 0522-4005421, 9565697720
Website : www.tcsacademy.org

उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य है/हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो क और न ही ख

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. भारत की शासन व्यवस्था एकात्मक शासन प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।
ख. एकात्मक शासन प्रणाली में न्यायपालिका हमेशा कमजोर होती है तथा संसद की शक्ति बहुत अधिक होती है।
उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य है/हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो क और न ही ख

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. भारत में एकीकृत न्यायिक व्यवस्था है।
ख. भारत में केन्द्र और राज्य स्तर पर भिन्न–भिन्न व पृथक न्यायपालिकायें हैं।
उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य है/हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो क और न ही ख

9. भारत में संविधान के आधारभूत लक्षणों का निर्धारणकर्ता है–
क. संसद
ख. न्यायालय
ग. राष्ट्रपति
घ. मंत्रिमण्डल

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. भारत की विधि–व्यवस्था मूलतः सकारात्मक विधि के सिद्धान्त पर आधारित है।
ख. भारतीय शासन व्यवस्था में न्यायपालिका की न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति प्राकृतिक विधि के तत्व को शामिल करती है।
उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य है/हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो क और न ही ख

11. शक्तियों के पृथक्करण तथा नियंत्रण व संतुलन का सिद्धान्त मुख्यतः पाया जाता है–
क. अमेरिकी शासन प्रणाली में
ख. भारतीय शासन प्रणाली में
ग. ब्रिटिश शासन प्रणाली में
घ. स्विट्जरलैंड की शासन प्रणाली में।

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. भारत में ब्रिटेन की तरह कार्यापालिका विधायिका के भीतर से ही बनती है।
ख. भारतीय न्यायपालिका को अमेरिकी न्यायपालिका की तरह न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति प्राप्त है।
उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य है/हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो क और न ही ख

13. निम्नलिखित में से किस शासन प्रणाली में सत्ता की वैधता का स्त्रोत जनता स्वंय होती है?
क. अभिजनतंत्र
ख. धर्मतंत्र
ग. राजतंत्र
घ. लोकतंत्र

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
क. भारत प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र का उदाहरण है।
ख. भारत में केन्द्रीय विधानमंडल दो सदनों से युक्त है।
उपरोक्त कथनों में कौन–सा/से सत्य है/हैं?
अ. केवल क
ब. केवल ख
स. क और ख दोनों
द. न तो क और न ही ख

M-1/80 Sec-B, Opp. Sardar Ji Sari Wale, Near Kapoorthala, Aliganj, Lucknow
Ph. : 0522-4005421, 9565697720
Website : www.tcsacademy.org